इकाई 4 अच् सन्धि – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अच् सन्धि – इको यणचि सूत्र से उपसर्गादृति धातौ सूत्रपर्यन्त।

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अच् सन्धि के अन्तर्गत **इको यणचि** (6.1.77) सूत्र से **उपसर्गादृति धातौ** (6.1.91) तक के सूत्रों के सूत्रार्थ एवं उदाहरणादि से परिचित हो सकेंगे।
- यण्, अयादि, गुण और वृद्धि सन्धि के स्थलों में सन्धि एवं सन्धिविच्छेद की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- एक स्थानी के स्थान पर अनेक आदेशों की प्राप्ति होने पर क्या व्यवस्था होगी? यह भी जान सकेंगे।
- परिभाषा सूत्रों की कार्यविधि को समझ सकेंगे।
- उत्सर्ग-अपवाद नियम को अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे।
- सपाद सप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के असिद्धत्व एवं त्रिपादी में भी परसूत्र के प्रति पूर्वसूत्र के असिद्धत्व का ज्ञान भली-भाँति प्राप्त कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व हम संज्ञाप्रकरणादि का भली-भाँति अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम अच् सन्धि का अध्ययन करेंगे। सन्धि का सामान्य अर्थ है – जोड़ या मेल। पूर्व के अन्तिम वर्ण तथा पर के आदि वर्ण के समीप (अर्धमात्राकालिक व्यवधान) होने पर एवं उन दो वर्णों के मेल से एक या दोनों वर्णों में आने वाले विकार (परिवर्तन) को ही संहिता अथवा सन्धि कहते हैं। सन्धि के स्थलों पर अर्धमात्राकालिक व्यवधान होता है। अचों (स्वरों) की सन्धि अच् सन्धि (स्वर सन्धि) कहलाती है। दो वर्णों का सामीप्य होने पर पूर्व व परवर्ण यदि अच् हों तथा उनकी सन्धि हो रही हो तो वह अच् सन्धि कहलाती है। इस प्रकार इस इकाई में आप यण्, अयादि, गुण आदि सन्धियों का अध्ययन करेंगे।

4.2 अच् सन्धि – इको यणचि सूत्र से उपसर्गादृति धातौ सूत्रपर्यन्त।

सूत्र – इको यणचि(6.1.77)

वृत्ति – इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य इति स्थिते।

सूत्रार्थ – इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश होता है, अच् (स्वरवर्ण) के परे रहते, संहिता के विषय में।

व्याख्या – यह यण् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'इकः' यह षष्ठी एकवचन, 'यण्' प्रथमा एकवचन तथा 'अचि' सप्तमी एकवचन का पद है। **संहितायाम्** (6.1.72) सूत्र से संहिता पद का अधिकार आ रहा है।

यह सूत्र यण् सन्धि का विधान करता है। यहाँ संहिता (सन्धि) का विषय होने तथा पूर्व में इक् प्रत्याहार के वर्ण (इ, उ, ऋ, ऌ) एवं पर में अच् प्रत्याहार के वर्ण (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ तथा औ) होने से इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश होते हैं, जैसे – सुधी+उपास्य में धी का ईकार इक् है एवं उससे परे उपास्यः का उकार अच् है अतः धी के ईकार को यण् आदेश के रूप में (य्, व्, र्, ल्)ये चारों वर्ण प्राप्त होते हैं।

आदेश – जो किसी के स्थान में उसको हटाकर के होता है, उसे आदेश कहते हैं। **(शत्रुवदादेशः)** आदेश शत्रु के समान होता है- शत्रु अपने स्थानी को हटाकर ही स्वतन्त्र रूप से शासन करता है। यहाँ यण् आदेश है।

स्थानी – जिसके स्थान पर आदेश होता है, उसे स्थानी कहते हैं। यहाँ इक् स्थानी है।

सूत्र – तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य(1.1.66)

वृत्ति – सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहतिस्य पूर्वस्य बोध्यम्।

सूत्रार्थ – सप्तम्यन्त के निर्देश से विधीयमान कार्य वर्णों के व्यवधान से रहित पूर्व के स्थान पर होता है।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'तस्मिन्' सप्तमी एकवचन, 'इति' अव्ययपद, 'निर्दिष्टे' सप्तमी एकवचन तथा 'पूर्वस्य' षष्ठी एकवचन का पद है।

वस्तुतः इको यणचि से इक् को प्राप्त यणादेश कहाँ हो? इसका निर्धारण यह परिभाषासूत्र करता है क्योंकि परिभाषासूत्रों का कार्य ही विधिसूत्रों की सहायता करना होता है। **अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।**

यहाँ सुधी+उपास्यः इस अवस्था में चार अच् सकारोत्तरवर्ती उकार, धकारोत्तरवर्ती ईकार, उपास्य का उकार एवं पकारोत्तरवर्ती आकार तथा तीन इक् सकारोत्तरवर्ती उकार, धकारोत्तरवर्ती ईकार एवं उपास्य का उकार विद्यमान हैं। इनमें से किस इक् को किस अच् के परे रहते यण् हो? इसका निर्धारण प्रस्तुत सूत्र करता है। जिससे अचि इस सप्तम्यन्त निर्देश के कारण उपास्य के उकार रूपी अच् के परे रहते उससे

अव्यवहित पूर्वस्थ धकारोत्तरवर्ती ईकार के स्थान पर यणादेश के रूप में (य्, व्, र्, ल्)ये चारों वर्ण प्राप्त होते हैं।

सूत्र – स्थानेऽन्तरतमः(1.1.50)

वृत्ति – प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्। सुध् य् उपास्य इति जाते।

सूत्रार्थ – प्रसङ्ग (प्राप्ति) होने पर अत्यन्त सदृश आदेश होता है।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'स्थाने' सप्तमी एकवचन एवं 'अन्तरतमः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। इस सूत्र से जहाँ पर एक स्थानी को अनेक आदेशों की प्राप्ति होती है, तब उन आदेशों में से जो स्थानी के अत्यन्त सदृश होगा उसके स्थान पर वही आदेश होगा।

वर्णों के सादृश्य के चार आधार हैं – स्थानकृत, अर्थकृत, प्रयत्नकृत, मात्राकृत।

सुधी+उपास्य इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** की सहायता से **इको यणचि** से धकारोत्तरवर्ती ईकार रूपी इक् के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्)की प्राप्ति हुई। अब एक ईकार के स्थान पर चार यणों में से कौन सा आदेश हो? इसका समाधान प्रस्तुत सूत्र करता है कि यण् के अन्तर्गत ईकार का सदृशतम वर्ण यकार ही है अतः ईकार के स्थान पर यकार आदेश होकर सुध् य्+उपास्य यह स्थिति बनती है।

सूत्र – अनचि च(8.4.47)

वृत्ति – अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वेन सुध् ध् य् उपास्य इति जाते।

सूत्रार्थ – अच् से परे यर् (हकार को छोड़कर अन्य सभी व्यञ्जनवर्ण) को द्वित्व विकल्प से होता है। यदि यर् से उत्तर अच् न हो तो।

व्याख्या – यह द्वित्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अनचि' यह सप्तमी एकवचन तथा 'च' अव्ययपद है। इसके अतिरिक्त अच्, यर्, द्वे और वा पद की अनुवृत्ति पूर्व सूत्रों से आती है।

कार्य का एकबार होना और एकबार न होना विकल्प कहलाता है। एक को दो हो जाने को द्वित्व कहते हैं। एक बार द्वित्व हो और एक बार न हो, इसे द्वित्व का विकल्प कहते हैं। विकल्प के कारण दो रूप हो जाते हैं तथा दोनों रूप शुद्ध माने जाते हैं।

इस प्रकार सुध्+य्+उपास्यः इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र **अनचि च** से अच् (सकारोत्तरवर्ती उकार) से परे यर् (धकार) को द्वित्व होकर सुध्+ध्+य्+उपास्य हुआ क्योंकि आगे यकार होने से अच् परे भी नहीं है। जिस पक्ष में यह सूत्र द्वित्व नहीं करेगा उस पक्ष में सुध्+य्+उपास्य यह स्थिति होगी।

सूत्र – झलां जश् झशि(8.4.53)

वृत्ति – स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः।

सूत्रार्थ – झल् के स्थान पर जश् होता है झश् परे रहते।

व्याख्या – यह जश्त्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'झलाम्' षष्ठी बहुवचन, 'जश्' प्रथमा एकवचन तथा 'झशि' सप्तमी एकवचन का पद है।

झल् प्रत्याहार में वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा ऊष्म वर्ण (श्, ष्, स् और ह्), जश् प्रत्याहार में वर्गों के तृतीय वर्ण (ग्,ज्,ड्,द्,ब्) तथा झश् प्रत्याहार में वर्गों के चतुर्थ (घ्,झ्,ढ्,ध्,भ्) एवं तृतीय वर्ण (ग्,ज्,ड्,द्,ब्) आते हैं।

यह सूत्र पूर्व में झल् एवं पर में झश् प्रत्याहार का वर्ण होने पर झल् के स्थान पर जश् आदेश करता है। सुध्+ध्+य्+उपास्यः इस द्वित्वपक्ष के स्थिति में झल् (प्रथम धकार) के स्थान पर, झश् (द्वितीय धकार) के परे रहते स्थानकृत सादृश्य के द्वारा जश् (दकार) हुआ। इस प्रकार पूर्ववर्ती धकार को दकार हुआ।

सूत्र – संयोगान्तस्य लोपः(8.2.23)

वृत्ति – संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्।

सूत्रार्थ – संयोगान्त (संयोग हो अन्त में जिसके) पद का लोप होता है।

व्याख्या – यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'संयोगान्तस्य' यह षष्ठी एकवचन एवं 'लोपः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। पदस्य का अधिकार है। सूत्र के संयोग पद का अभिप्राय है कि जब दो या दो से अधिक हल् वर्णों के मध्य अच् वर्ण न हों तो **हलोऽनन्तरा संयोगः** से उनकी संयोगसंज्ञा हो जाती है। सुद्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में द्+ध्+य् इन तीन वर्णों के मध्य कोई अच् वर्ण नहीं है अतः इनकी संयोगसंज्ञा हुई और सुद्ध्य् यह संयोगान्त पद हुआ। वस्तुतः यहाँ पर सुधी+उपास्य इन दो पदों में समास होने के कारण इनसे हुए सुबन्त प्रत्ययों का लोप हो गया है परन्तु प्रत्ययलक्षण के द्वारा इन्हें पद मानकर संयोगान्त पद का लोप प्राप्त होता है परन्तु स्,उ,द्,ध्,य् अथवा सुद्ध्य् इस सम्पूर्ण संयोगान्त पद में से यह लोप किसका हो? इसका समाधान अग्रिम सूत्र करता है।

सूत्र – अलोऽन्त्यस्य(1.1.52)

वृत्ति – षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते।

सूत्रार्थ – षष्ठी विभक्ति के निर्देश से होने वाला आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है। (इस प्रकार) यलोप के प्राप्त होने पर।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अलः' एवं 'अन्त्यस्य' दोनों षष्ठी एकवचन के पद हैं। स्थाने, षष्ठी, निर्दिष्टस्य इन पदों का अध्याहार होता है। अन्य परिभाषासूत्रों के समान ही यह परिभाषासूत्र भी विधिसूत्रों का सहायक होता है अर्थात् पूर्वसूत्र से संयोगान्तपद का लोप प्राप्त होने पर यह सूत्र व्यवस्था करते हुए कहता है कि षष्ठी को निर्देश करके होने वाला आदेश अन्तिम अल् को ही हो। प्रस्तुत सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** यह सूत्र संयोग के अन्तिम अल् के लोप का विधान करता है। अतः सुद्ध्य्+उपास्य में संयोग के अन्तिम अल् यकार का लोप प्राप्त हुआ।

वार्तिक – यणः प्रतिषेधो वाच्यः।

अर्थ – संयोगान्त में प्राप्त यण् के लोप का निषेध कहना चाहिए अर्थात् यण् का लोप नहीं होता है।

उदाहरण – सुद्ध्युपास्यः। मद्ध्वरिः। धात्रंशः। लाकृतिः।

व्याख्या – यह वार्तिक **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र पर पढा गया है। जिस सूत्र पर जो वार्तिक पढा गया है, वह उसके विषय से सम्बन्धित माना जाता है। **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र संयोगान्त पद के अन्तिम अल् का लोप करता है, परन्तु प्रस्तुत वार्तिक के कारण अब वह लोप यण् (य्,व्, र्,ल्) वर्णों का नहीं होगा। इस प्रकार सु+द्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में प्राप्त संयोगान्त अन्त्यवर्ण यकार के लोप का निषेध हो जाता है।

रूपसिद्धि –

सुद्ध्युपास्यः/सुध्युपास्यः – सुधी+उपास्यः इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (उपास्य घटक उकार) के परे रहते उससे अव्यवहित पूर्व धकारोत्तरवर्ती ईकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** इस परिभाषासूत्र के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य की सहायता से इ के स्थान पर य् हुआ। सुध्+य्+उपास्य इस स्थिति में **अनचि च** इस सूत्र से अच् सकारोत्तरवर्ती उकार से परे यर् धकार है और आगे अच् न होकर यकार है अतः यर् जो धकार उसे द्वित्व हुआ। सुद्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में संयोगान्त पद सुद्ध्य् के अन्तिम अल् की **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** इस सूत्र से लोप प्राप्त हुआ। चूँकि यह लोप यण् को प्राप्त हुआ है, अतः उसका निषेध **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक से हुआ। सुद्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में **अज्झीनं परेण संयोज्यम्** नियम के अनुसार अच् से रहित हल् को अग्रिमवर्ण के साथ मिला देना चाहिए। अतः हलों को अग्रिम वर्णों के साथ मिलाकर सुद्ध्युपास्य यह स्थिति हुई। तत्पश्चात् स्वाद्युत्पत्ति होकर सुद्ध्युपास्य+सु इस स्थिति में सकारोत्तरवर्ती उकार का लोप हुआ। तत्पश्चात् स् को रुत्वविसर्ग होकर सुद्ध्युपास्यः रूप सिद्ध हुआ। जब विकल्प पक्ष में **अनचि च** सूत्र से धकार को द्वित्व नहीं होगा तो सुध्+य्+उपास्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन, स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्वविसर्ग करके सुध्युपास्यः यह रूप बनेगा।

मद्ध्वरिः/मध्वरिः – मधु+अरि इस स्थिति **में तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (अरि घटक अकार) के परे रहते उससे अव्यवहित पूर्व धकारोत्तरवर्ती उकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** इस परिभाषासूत्र के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य की सहायता से उ के स्थान पर व् हुआ। मध्+व्+अरि इस स्थिति में **अनचि च** सूत्र से अच् मकारोत्तरवर्ती अकार से परे यर् धकार है और आगे अच् न होकर वकार है अतः यर् जो धकार उसे द्वित्व हुआ। मध्+ध्+व्+अरि इस स्थिति में संयोगान्त पद मद्ध्व् के अन्तिम अल् का **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से लोप प्राप्त हुआ। चूँकि यह लोप यण् को प्राप्त हुआ है अतः उसका निषेध **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** वार्तिक से होकर मध्+ध्+व्+अरि इस

स्थिति में **अज्झीनं परेण संयोज्यम्** इस नियम के अनुसार अच् से रहित हल् को अग्रिमवर्ण के साथ मिलाकर मद्ध्वरि यह स्थिति हुई। तत्पश्चात् स्वाद्युत्पत्ति होकर मद्ध्वरि+सु इस स्थिति में सकारोत्तरवर्ती उकार का लोप हुआ। तत्पश्चात् स् को रुत्वविसर्ग होकर मद्ध्वरिः रूप सिद्ध हुआ। जब विकल्प पक्ष में **अनचि च** सूत्र से धकार को द्वित्व नहीं होगा तो मध्+व्+अरि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन, स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्वविसर्ग करके मध्वरिः यह रूप बनेगा।

धात्त्रंशः/धात्रंशः – धातृ+अंश इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (अंश घटक अकार) के परे रहते उससे अव्यवहितपूर्व धकारोत्तरवर्ती ऋकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। यहाँ एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** इस परिभाषासूत्र के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य से ऋ के स्थान पर र् हुआ। धात्+र्+अंश इस स्थिति में **अनचि च** सूत्र से अच् (धकारोत्तरवर्ती आकार) से परे यर् तकार है और आगे अच् न होकर रकार है अतः यर् (तकार) को द्वित्व हुआ। धात्+त्+र्+अंश इस स्थिति में संयोगान्त पद धात्तृ् के अन्तिम अल् का **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से लोप प्राप्त हुआ। चूँकि यह लोप यण् का होना है अतः उसका निषेध **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** वार्तिक से होकर धात्+त्+र्+अंश इस स्थिति में **अज्झीनं परेण संयोज्यम्** नियम के अनुसार हलों का अग्रिमवर्णों के साथ मेल करके धात्त्रंश यह स्थिति हुई। तत्पश्चात् स्वादिकार्य होकर धात्त्रंशः रूप सिद्ध हुआ। विकल्प पक्ष में **अनचि च** से जब तकार को द्वित्व नहीं होगा तो धात्रंशः यह रूप बनेगा।

लाकृतिः – लृ+आकृति इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (आकृति घटक आकार) के परे रहते उससे अव्यवहित पूर्व लृकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य से लृ के स्थान पर ल् हुआ। ल्+आकृति इस स्थिति में स्वादिकार्य होकर लाकृतिः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – एचोऽयवायावः(6.1.78)

वृत्ति – एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि।

सूत्रार्थ – एच् (ए,ओ,ऐ,औ) के स्थान पर क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होते हैं, अच् (स्वरवर्ण) परे रहते।

व्याख्या – यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'एचः' यह षष्ठी एकवचन एवं 'अयवायावः' प्रथमा बहुवचन का रूप है। **इको यणचि** सूत्र से अचि की अनुवृत्ति तथा **संहितायाम्** सूत्र से संहिता पद का अधिकार आ रहा है। एचः पद में स्थानषष्ठी है जिसका अर्थ है कि जो भी कार्य हो एच् के स्थान पर हो। एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत ए, ओ, ऐ, औ ये चार वर्ण आते हैं। अनुवृत्त 'अचि' पद में सप्तमी है जिसके कारण **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से एच् को अयादि आदेश अच् के अव्ययहितपूर्व में होगा।

सूत्र – यथासंख्यमनुदेशः समानाम्(1.3.10)

वृत्ति – समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

सूत्रार्थ – समान सम्बन्ध (संख्या की दृष्टि से) वाली विधि संख्या के अनुसार (क्रमानुसार) होती है।

उदाहरण – हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'यथासङ्ख्यम्' एवं 'अनुदेशः' प्रथमा एकवचन तथा 'समानाम्' षष्ठी बहुवचन का पद है। यह परिभाषासूत्र पूर्वसूत्र **एचोऽयवायावः** का उपकारक है। **एचोऽयवायावः** सूत्र से होने वाला आदेश समविधि है, क्योंकि स्थानी एच् (ए,ओ,ऐ,औ) भी चार हैं और अयादि आदेश भी चार हैं। अतः इस परिभाषा के कारण वह विधि क्रमशः अर्थात् पहले ए को पहला अय्, दूसरे ओ को दूसरा अव्, तीसरे ऐ को तीसरा आय् और चौथै औ को चौथा आव् आदेश होगा।

रूपसिद्धि –

हरये – यह पद हरि शब्द के चतुर्थी एकवचन का है। जब हरे+ए ऐसी स्थिति होती है तब एच् (रेफोत्तरवर्ती एकार) से अच् (ए) परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र की सहायता से **एचोऽयवायावः** सूत्र के द्वारा अव्यवहित अच् परे रहते ए के स्थान पर अय् आदेश हुआ। हर्+अय्+ए इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके हरये रूप सिद्ध हुआ।

विष्णवे – यह पद विष्णु शब्द के चतुर्थी एकवचन का पद है। विष्णो+ए की स्थिति में एच् (णकारोत्तरवर्ती ओकार) से अच् ए परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र की सहायता से **एचोऽयवायावः** सूत्र के द्वारा अव्यवहित अच् परे रहते ओ के स्थान पर अव् आदेश हुआ। विष्ण्+अव्+ए इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके विष्णवे रूप सिद्ध हुआ।

नायकः – नै+अकः इस स्थिति में एच् से अच् परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र की सहायता से **एचोऽयवायावः** से अव्यवहित अच् परे रहते ऐ के स्थान पर आय् आदेश हुआ। न्+आय्+अक इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर नायकः रूप सिद्ध हुआ।

पावकः – पौ+अकः इस स्थिति में एच् से अच् परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की सहायता से **एचोऽयवायावः** सूत्र से अव्यवहित अच् परे रहते औ के स्थान पर आव् आदेश हुआ। प्+आव्+अक इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर पावकः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – वान्तो यि प्रत्यये(6.1.79)

वृत्ति – यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव आव एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्।

सूत्रार्थ – यकारादि (यकार हो आदि में जिसके) प्रत्यय परे रहते ओ को अव् तथा औ को आव् आदेश होता है।

उदाहरण – गव्यम्। नाव्यम्।

व्याख्या – यह अव्-आव् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'वान्तः' प्रथमा एकवचन तथा 'यि' एवं 'प्रत्यये' ये दोनों सप्तमी एकवचन के पद हैं। सूत्र में पठित पद वान्तः पद का अर्थ है 'वकार हो अन्त में जिसके' है, पूर्वसूत्र **एचोऽयवायावः** में वकारान्त अव् तथा आव् ये दो आदेश हैं। अतः यहाँ वान्तः का अभिप्राय अव् तथा आव् हुआ। यकारादि प्रत्यय का आदिवर्ण यकार अच् नहीं है अतः इसके परे रहते **एचोऽयवायावः** सूत्र से अव्-आव् आदेश प्राप्त न होने के कारण प्रस्तुत सूत्र **वान्तो यि प्रत्यये** से यकारादि प्रत्यय य के परे रहते ओ तथा औ के स्थान पर क्रमशः अव् एवं आव् आदेश होता है।

रूपसिद्धि –

गव्यम् – गो+य इस स्थिति में गकारोत्तरवर्ती ओकार से यत् प्रत्यय घटक यकार के परे रहते **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र से ओ के स्थान पर अव् आदेश हुआ। ग्+अव्+य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर गव्यम् रूप सिद्ध हुआ।

नाव्यम् – नौ+य इस स्थिति में (नकारोत्तरवर्ती औकार) से यत् प्रत्यय घटक यकार के परे रहते **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र से औ के स्थान पर आव् आदेश हुआ। न्+आव्+य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करने के पश्चात् स्वादिकार्य होकर नाव्यम् रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक – अध्वपरिमाणे च।

अर्थ – गो शब्द से यूति शब्द परे रहते ओकार के स्थान पर अव् आदेश होता है, यदि समुदाय से मार्ग का परिमाण अर्थ ज्ञात हो तो।

उदाहरण – गव्यूतिः।

व्याख्या – गो+यूति इस स्थिति में पूर्वसूत्रों से अव् आदेश अप्राप्त है क्योंकि यहाँ अच् अथवा यकारादि प्रत्यय परे नहीं है। अतः इस प्रयोग की सिद्धि के लिए प्रस्तुत वार्तिक पढा गया। इस वार्तिक से ओ के स्थान पर अव् आदेश हुआ।

रूपसिद्धि –

गव्यूतिः – गो+यूति इस स्थिति में **अध्वपरिमाणे च** इस वार्तिक से गकारोत्तरवर्ती ओकार से यूति शब्द के परे रहते ओ के स्थान पर अव् आदेश हुआ। ग्+अव्+यूति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन एवं स्वादिकार्य करके गव्यूतिः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अदेङ् गुणः(1.1.2)

वृत्ति – अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

सूत्रार्थ – अ, ए और ओ की गुणसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह गुणसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। अत्, एङ् एवं गुणः तीनों प्रथमा एकवचन के पद हैं। इस सूत्र के बाद सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में गुण शब्द से अ, ए, ओ का ही व्यवहार होता है।

सूत्र – तपरस्तत्कालस्य(1.1.70)

वृत्ति – तः परो यस्मात् स च तात् परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात्।

सूत्रार्थ – त् जिससे परे तथा त् से जो परे है वह अपने समकाल वाले वर्ण की संज्ञा होता है।

व्याख्या – इस सूत्र में दो पद हैं। 'तपरः' प्रथमा एकवचन तथा 'तत्कालस्य' षष्ठी एकवचन का पद है। स्व पद की अनुवृत्ति आती है। **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** सूत्र द्वारा अण् अपने तथा अपने सवर्णों के ग्राहक होते हैं। यह सूत्र उसका अपवाद है। तपरयुक्त वर्ण अपना तथा अपने काल के सदृशकाल वाले सवर्णों का ही ग्राहक होगा अन्य का नहीं। यही **तपरस्तत्कालस्य** सूत्र का तात्पर्य है।

जैसे **अदेङ्गुणः** सूत्र में (अत्+एङ्+गुणः) अकार के बाद त् है तथा एङ् के पूर्व त् है। इस प्रकार के तकार होने को तपर होना भी कहते हैं। अकार के बाद तपर तथा एङ् से पूर्व तपर होने के कारण अ तथा एङ् (ए,ओ) अण् के अन्तर्गत होते हुए भी अपने समकाल उच्चरित वर्णों का ही बोध करायेंगे। अतः अ से ह्रस्व अकारमात्र का तथा एङ् अर्थात् ए और ओ से केवल दीर्घ एकार एवं ओकार का बोध होकर **अदेङ् गुणः** सूत्र का अर्थ होगा– 'ह्रस्व अकार, दीर्घ एकार तथा दीर्घ ओकार की गुणसंज्ञा होती है'।

सूत्र – आद्गुणः(6.3.87)

वृत्ति – अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्

सूत्रार्थ – अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व और पर दोनों के स्थान पर गुणरूप एकादेश होता है।

उदाहरण – उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्।

व्याख्या – यह गुणविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'आद्' पंचमी एकवचन तथा 'गुणः' प्रथमा एकवचन का पद है। अचि, पूर्वपरयोः और एकः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। एकादेश का अभिप्राय है दो या दो से अधिक वर्णों के स्थान पर एक वर्णरूप आदेश।

जैसे उप+इन्द्र इस स्थिति में पकारोत्तरवर्ती अवर्ण से परे इन्द्रघटक इकार अच् है, अतः पूर्वपर (अ+इ) के स्थान पर गुणरूप एकादेश एकार होकर उपेन्द्र सिद्ध हुआ।

सूत्रार्थ के अनुसार तो अवर्ण से कोई भी अच् वर्ण परे हो तो गुण होगा परन्तु इस सूत्र के दो अपवाद सूत्र हैं **अकः सवर्णे दीर्घः** तथा **वृद्धिरेचि।** अतः अवर्ण से अवर्ण परे होने पर गुण को बाधकर दीर्घ तथा अवर्ण से एच् परे होने पर वृद्धि होगी। जिसके कारण अवर्ण से इ, उ, ऋ और ऌ के परे होने पर ही पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश होगा।

रूपसिद्धि –

उपेन्द्रः – उप+इन्द्र इस स्थिति में अवर्ण (पकारोत्तरवर्ती अकार) से परे अच् (इन्द्र घटक इकार) है अतः **आद्गुणः** सूत्र से पूर्वपर (अ+इ) के स्थान पर एकार आदेश हुआ। उप्+ए+न्द्र इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर उपेन्द्रः यह रूप सिद्ध हुआ।

गङ्गोदकम् – गङ्गा+उदक इस स्थिति में अवर्ण गकारोत्तरवर्ती आकार से परे अच् उदक घटक उकार है अतः **आद्गुणः** सूत्र से पूर्वपर (आ+उ) के स्थान पर ओकार आदेश हुआ। गङ्ग्+ओ+दक इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर स्वादिकार्य होकर गङ्गोदकम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – उपदेशेऽजनुनासिक इत्(1.3.2)

वृत्ति – उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण् सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा।

सूत्रार्थ – उपदेशावस्था में अनुनासिक अच् की इत्संज्ञा होती है। पाणिनीय परम्परा के आचार्यों की प्रतिज्ञा से अनुनासिक स्वरों का ज्ञान होता है। लण् सूत्रस्थ अवर्ण के साथ उच्चारित र् वर्ण र् तथा ल् की बोधक संज्ञा है।

व्याख्या – यह इत्संज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। यह अनुनासिक अचों की इत्संज्ञा करता है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'उपदेशे' यह सप्तमी एकवचन, 'अच्', 'अनुनासिक' एवं 'इत्' ये प्रथमा एकवचन के पद हैं। इत्संज्ञा का फल **तस्य लोपः** सूत्र से इत्संज्ञकवर्ण का लोप होना है।

महामुनि पाणिनि ने अपने व्याकरण में अनुनासिक अचों पर (अँ) इस प्रकार का चिह्न किया था। परन्तु समय के साथ वे अनुनासिक पाठ नष्ट हो गये। अतः अब अनुनासिक जानने की व्यवस्था गुरु परम्परा के उपदेश के अनुसार समझना चाहिए। अभिप्राय यह है कि परम्परा में जिन अचों को अनुनासिक माना गया है उन्हीं को स्वीकार करना चाहिए।

सूत्र – उरण् रपरः(1.1.51)

वृत्ति – ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः। तवल्कारः।

सूत्रार्थ – ऋ तीस प्रकार का होता है ऐसा **अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः** सूत्र में कहा जा चुका है। अतः ऋ के जो तीस प्रकार हैं उनके स्थान पर होने वाला जो अण् वह रपर (र प्रत्याहार के कारण लपर भी) होकर प्रवृत्त होगा।

उदाहरण – कृष्णर्द्धिः।

व्याख्या – यह रपर तथा लपर विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'उः' यह ऋ शब्द के षष्ठी एकवचन का तथा 'अण्' एवं 'रपरः' ये दोनों प्रथमा एकवचन के पद हैं। प्रस्तुत सूत्र में अण् प्रत्याहार से अ, इ और उ का ग्रहण होता है। अतः ऋ और ऌ के स्थान पर जहाँ कहीं पर ये आदेश होंगे वे अर्, अल्, आर्, आल्, इर्, इल्, उर्, उल् के रूप में ही प्रवृत्त होगा।

रूपसिद्धि –

कृष्णर्द्धिः – कृष्ण+ऋद्धि इस स्थिति में **आद्गुणः** से अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से अच् (ऋद्धि के ऋकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश के रूप में (**स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से) अ प्राप्त हुआ। अकार अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत

आता है अतः प्रस्तुत सूत्र **उरण् रपरः** से वह रपर अर्थात् अ से परे र् होकर (अर्) प्रवृत्त हुआ। कृष्ण्+अर्+द्धि इस स्थिति में स्वादिकार्य होकर कृष्णर्द्धिः रूप सिद्ध हुआ।

तवल्कारः – तव+लृकार इस स्थिति में **आद्गुणः** से अवर्ण (वकारोत्तरवर्ती अकार) से अच् (लृ) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश के रूप में (**स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से) अ प्राप्त हुआ। अकार अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है अतः **उरण् रपरः** सूत्र से वह लपर अर्थात् अ से परे ल् होकर (अल्) प्रवृत्त हुआ। तव्+अल्+कार इस स्थिति में स्वादिकार्य होकर तवल्कारः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – लोपः शाकल्यस्य(8.3.19)

वृत्ति – अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे।

सूत्रार्थ – अवर्ण पूर्व में हो जिसके ऐसे पदान्त यकार तथा वकार का विकल्प से लोप होता है, अश् प्रत्याहार के परे रहते।

व्याख्या – यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'लोपः' प्रथमा एकवचन तथा 'शाकल्यस्य' षष्ठी एकवचन का पद है। अपूर्वस्य, व्या, पदान्तयोः, अशि पद अनुवृत्त हैं। इस सूत्र में शाकल्यस्य का अभिप्राय है शाकल्य के मत में। पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों का मत उनके नामोल्लेखपूर्वक किया है। यहाँ पर शाकल्य के मत में तो लोप है परन्तु पाणिनि के मत में नहीं। अतः दोनों के मत को प्रमाण मानकर आचार्यों ने इस सूत्र के कार्य को विकल्प से मान लिया। इस सूत्र का उदाहरण अग्रिम सूत्र में है।

सूत्र – पूर्वत्राऽसिद्धम्(8.2.1)

वृत्ति – सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वम् प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्। हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

सूत्रार्थ – सपादसप्ताध्यायी (सवा सात अध्याय) के प्रति त्रिपादी (शेष तीन पाद) के सूत्र असिद्ध होते हैं और त्रिपादी सूत्रों में भी पूर्वशास्त्र (पूर्वसूत्र) के प्रति परशास्त्र असिद्ध होता है।

उदाहरण – हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

व्याख्या – यह अधिकारसूत्र है। यह सूत्र अष्टाध्यायी के अष्टमाध्याय के द्वितीयपाद का प्रथमसूत्र है। इस सूत्र से पहले के सात अध्याय तथा एक पाद को सपाद सप्ताध्यायी तथा इस सूत्र से लेकर शेष तीन पाद को त्रिपादी कहा जाता है। इस सूत्र के अनुसार सपाद सप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के सूत्रों से विहित कार्य असिद्ध (न हुए के समान) माने जायेंगे। त्रिपादी में भी पूर्वशास्त्र (सूत्र) के प्रति परशास्त्र असिद्ध होता है। अतः हर इह इस प्रयोग में त्रिपादी शास्त्र **लोपः शाकल्यस्य** द्वारा कृत यकार लोप कार्य सपाद सप्ताध्यायी शास्त्र **आद्गुणः** की दृष्टि में नहीं हुए के समान है।

रूपसिद्धि –

हर इह, हरयिह – हरे+इह इस स्थिति में **एचोऽयवायावः** सूत्र से अच् परे रहते एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ। हर्+अय्+इह इस स्थिति में **लोपः शाकल्यस्य**

सूत्र से अवर्ण से परे पदान्त यकार का विकल्प से लोप हुआ। हर+इह इस अवस्था में अवर्ण (रकारोत्तरवर्ती अकार) से परे अच् (इह घटक इकार) परे रहते पूर्वपर के स्थान में **आद्गुणः** सूत्र से गुण प्राप्त होता है। परन्तु **पूर्वत्राऽसिद्धम्** से सपादी गुणकार्य के प्रति त्रिपादी यकार लोपकार्य असिद्ध हो गया। अतः अवर्ण से परे अच् नहीं मिला क्योंकि मध्य में यकार का व्यवधान प्राप्त हुआ। अतः गुणरूप एकादेश की प्रवृत्ति नहीं हुई तथा हर इह सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में यकारलोप नहीं होगा उस पक्ष में अय् आदेश के बाद हर्+अय्+इह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर हरयिह रूप सिद्ध होगा।

विष्ण इह, विष्णविह – विष्णो+इह इस स्थिति में **एचोऽयवायावः** सूत्र से अच् परे रहते एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ। विष्ण्+अव्+इह इस स्थिति में **लोपः शाकल्यस्य** सूत्र से अवर्ण से परे पदान्त वकार का विकल्प से लोप हुआ। विष्ण+इह इस अवस्था में अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से परे अच् (इह घटक इकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त होता है। परन्तु **पूर्वत्राऽसिद्धम्** सूत्र से सपादी गुणकार्य के प्रति त्रिपादी वकार लोपकार्य असिद्ध हो गया। अतः मध्य में वकार का व्यवधान होने से अवर्ण से परे अच् नहीं मिला। अतः गुणरूप एकादेश की प्रवृत्ति नहीं हुई तथा विष्ण इह सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में यकारलोप नहीं होगा उस पक्ष में अव् आदेश के बाद विष्ण्+अव्+इह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर विष्णविह रूप सिद्ध होगा।

सूत्र – वृद्धिरादैच्(1.1.1)

वृत्ति – आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

सूत्रार्थ – आ और ऐच् (ऐ,औ) की वृद्धिसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह वृद्धिसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वृद्धि, आत् और ऐच् ये तीनों पद प्रथमा एकवचन के हैं। **अदेङ् गुणः** के समान ही इस सूत्र में भी तपरकरण है परन्तु वहाँ पर तपर पूर्व एवं पर दोनों के लिए था। इस सूत्र में तपरकरण केवल एच् के लिए है, आ के लिए नहीं। आकार अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत नहीं आता है अतः वह अपने सवर्णों का बोध नहीं करा सकता है। अतः उसके साथ तपर करके सवर्णबोध का निषेध करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। यहाँ पर ऐच् के ग्रहण से प्लुत सवर्णों का ग्रहण न हो, इस कारण से तपर ग्रहण किया गया है। इस सूत्र के बाद सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में जहाँ कहीं भी वृद्धि पद व्यवहृत है वहाँ पर आ, ऐ और औ उपस्थित होंगे।

सूत्र – वृद्धिरेचि(6.1.88)

वृत्ति – आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

सूत्रार्थ – अवर्ण से एच् परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश होता है।

उदाहरण – कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

व्याख्या – यह वृद्धिविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'वृद्धिः' प्रथमा एकवचन तथा 'एचि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। आत्, पूर्वपरयोः, एकः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र **आद्गुणः** से होने वाले गुणादेश का अपवाद है। जिस सूत्र का विषय व्यापक हो वह उत्सर्गशास्त्र तथा जिसका विषय अल्प हो वह अपवादशास्त्र होता है।

रूपसिद्धि –

कृष्णैकत्वम् – कृष्ण+एकत्व इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से एच् (एकत्व घटक एकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश ऐ हुआ। कृष्ण्+ऐ+कत्व इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर कृष्णैकत्वम् रूप सिद्ध हुआ।

गङ्गौघः – गङ्गा+ओघ इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से अवर्ण (गकारोत्तरवर्ती आकार) से एच् (ओघ घटक ओकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश औ हुआ। गङ्ग्+औ+घ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर गङ्गौघः रूप सिद्ध हुआ।

देवैश्वर्यम् – देव+ऐश्वर्य इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से अवर्ण (वकारोत्तरवर्ती अकार) से एच् (ऐश्वर्य घटक ऐकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश ऐ हुआ। देव्+ऐ+श्वर्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर देवैश्वर्यम् रूप सिद्ध हुआ।

कृष्णौत्कण्ठ्यम् – कृष्ण+औत्कण्ठ्य इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** से अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से एच् (औत्कण्ठ्य घटक औकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश औ हुआ। कृष्ण्+औ+त्कण्ठ्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर कृष्णौत्कण्ठ्यम् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – एत्येधत्यूठ्सु(6.1.89)

वृत्ति – अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। पररूपगुणापवादः। उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्? उपेतः। मा भवान् प्रेदिधत्।

सूत्रार्थ – अवर्ण से परे यदि एच् आदि वाली इण् तथा एध् धातु हो अथवा ऊठ् हो तो पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश होता है।

उदाहरण – उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः।

व्याख्या – यह वृद्धिविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में एकमात्र पद सप्तमी बहुवचन का है। यह सूत्र **एङि पररूपम्** तथा **आद्गुणः** सूत्रों का अपवाद है। इस सूत्र में एजादि धातु कहने के कारण उप+इतः इस स्थिति में वृद्धि नहीं होगी। यदि इस सूत्र में एजादि नहीं कहते तो यहाँ पर भी वृद्धि हो जाती। प्र+इदिधत् यहाँ पर भी एजादि नहीं कहने पर वृद्धि होने लगती। इन दोनों प्रयोगों में **आद्गुणः** से गुण होकर उपेतः तथा प्रेदिधत् सिद्ध होते हैं।

रूपसिद्धि –

उपैति – उप+एति इस स्थिति में अवर्ण (पकारोत्तरवर्ती अकार) से परे (इण् गतौ धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन का पद) एति घटक एकार है, अतः **एत्येधत्यूठ्सु** सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। उप्+ऐ+ति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके उपैति रूप सिद्ध हुआ।

उपैधते – उप+एधते इस स्थिति में अवर्ण (पकारोत्तरवर्ती अकार) से परे (एध् वृद्धौ धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन का पद) एधते घटक एकार है, अतः **एत्येधत्यूठ्सु** से पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। उप्+ऐ+धते इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके उपैधते रूप सिद्ध हुआ।

प्रष्ठौहः – प्रष्ठ+ऊह इस स्थिति में अवर्ण (ठकारोत्तरवर्ती अकार) से परे (ऊठ् धातु सम्बन्धी) ऊह घटक ऊकार है, अतः **एत्येधत्यूठ्सु** से पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्रष्ठ्+औ+ह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन एवं स्वादिकार्य होकर के प्रष्ठौहः रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक – अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्।

अर्थ – अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द के परे होने पर भी पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हो, ऐसा कहना चाहिए।

उदाहरण – अक्षौहणी सेना।

रूपसिद्धि –

अक्षौहणी – अक्ष+ऊहिनी इस स्थिति में गुण की प्राप्ति थी जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्** से अक्ष शब्द के क्षकारोत्तरवर्ती अकार से परे ऊहिनी घटक उकार है, अतः पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। अक्ष्+औ+हिनी इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा णत्व होकर अक्षौहिणी रूप सिद्ध होता है।

वार्तिक – प्रादूहोढोढयेषैष्येषु।

अर्थ – प्र शब्द से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष तथा एष्य शब्दों के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश होता है।

उदाहरण – प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः।

रूपसिद्धि –

प्रौहः – प्र+ऊह इस स्थिति में **आद्गुणः** सूत्र से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे ऊह शब्द है तो पूर्वपर (अ+ऊ) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+औ+ह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रौहः रूप सिद्ध हुआ।

प्रौढः – प्र+ऊढ इस स्थिति में **आद्गुणः** सूत्र से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे ऊढ शब्द है तो पूर्वपर (अ+ऊ) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+औ+ढ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रौढः रूप सिद्ध हुआ।

प्रौढिः – प्र+ऊढि इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे ऊढि शब्द है तो पूर्वपर (अ+ऊ) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+औ+ढि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रौढिः रूप सिद्ध हुआ।

प्रैषः – प्र+एष इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे एष शब्द है तो पूर्वपर (अ+ए) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+ऐ+ष इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रैषः रूप सिद्ध हुआ।

प्रैष्यः – प्र+एष्य इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे एष्य शब्द है तो पूर्वपर (अ+ए) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+ऐ+ष्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रैष्यः रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक – ऋते च तृतीयासमासे। सुखेन ऋतः सुखार्तः। तृतीयेति किम्? परमर्तः।

अर्थ – तृतीयासमास में अवर्ण से ऋत शब्द के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। तृतीया समास होने पर ही यह वृद्धि एकादेश होता है, यदि ऐसा नहीं कहते तो परमर्तः (परम+ऋत) इस कर्मधारय समस्तपद में भी वृद्धि होने लगती। यहाँ वृद्धि न होने से गुण हुआ है।

उदाहरण – सुखेन ऋतः सुखार्तः।

रूपसिद्धि –

सुखार्तः – सुख+ऋत इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है, जिसे बाधकर **ऋते च तृतीयासमासे** इस वार्तिक से तृतीया समास में अवर्ण (खकारोत्तरवर्ती अकार) से परे ऋत घटक ऋकार है अतः पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि **उरण् रपरः** सूत्र से रपर होकर आर् हुआ। सुख्+आर्+त इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर सुखार्तः रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक – प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे।

अर्थ – प्रवत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण तथा दश इन छः शब्दों परे ऋण शब्द रहे तो पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है।

उदाहरण – प्रार्णम्, वत्सतरार्णम्।

रूपसिद्धि –

प्रार्णम् – प्र+ऋण इस स्थिति में गुण प्राप्त था जिसे बाधकर **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे** इस वार्तिक से अ+ऋ के स्थान पर वृद्धि हुई। प्र+आर्+ण इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रार्णम् रूप सिद्ध हुआ।

वत्सतरार्णम् – वत्सतर+ऋण इस स्थिति में गुण प्राप्त था जिसे बाधकर **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे** इस वार्तिक से अ+ऋ के स्थान पर वृद्धि हुई। वत्सतर्+आर्+ण इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर वत्सतरार्णम् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – उपसर्गाः क्रियायोगे(1.4.59)

वृत्ति – प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः। प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उद् अभि प्रति परि उप – एते प्रादयः।

सूत्रार्थ – क्रिया के योग में प्रादियों की उपसर्गसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह उपसर्गसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'उपसर्गाः' प्रथमा बहुवचन तथा 'क्रियायोगे' सप्तमी एकवचन का पद है। यह सूत्र **प्राग्रीश्वरान्निपाताः** सूत्र के अधिकार में पठित है अतः प्रादियों की निपातसंज्ञा भी होती है। निपातसंज्ञा का प्रयोजन अव्यय बनाना है। पाणिनि विरचित गणपाठ के अन्तर्गत प्रादिगण का पाठ है।

सूत्र – भूवादयो धातवः(1.3.1)

वृत्ति – क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

सूत्रार्थ – क्रिया के वाचक भू आदि की धातुसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह धातुसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'भूवादयः' तथा 'धातवः' ये दोनों प्रथमा बहुवचन के पद हैं। यहाँ भू आदि से केवल भ्वादिगण ही नहीं समझना चाहिए, अपितु सम्पूर्ण धातुपाठ का ग्रहण करना चाहिए।

सूत्र – उपसर्गादृति धातौ(6.1.91)

वृत्ति – अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति।

सूत्रार्थ – अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो तो पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है।

उदाहरण – प्रार्च्छति।

व्याख्या – यह वृद्धिविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। उपसर्गात् पंचमी एकवचन तथा ऋति और धातौ सप्तमी एकवचन के पद हैं।

रूपसिद्धि –

प्रार्च्छति – प्र+ऋच्छति इस स्थिति में अवर्णान्त उपसर्ग है प्र एवं उससे परे ऋकारादि धातु ऋच्छ है अतः **उपसर्गादृति धातौ** सूत्र से पूर्वपर (अ+ऋ) के स्थान पर वृद्धि (रपर होकर आर्) हुई। प्र+आर्+च्छति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके प्रार्च्छति रूप सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न

1. समुचित विकल्प का चयन कीजिए–

i) सुद्ध्युपास्यः का वैकल्पिक रूप है –

(क) सुध्युपास्यः (ख) सुद्युपास्यः (ग) सुद्ध्युपास्यः (घ) सुध्युपास्यः

ii) **स्थानेऽन्तरतमः** सूत्र है –

(क) संज्ञासूत्र (ख) विधिसूत्र (ग) परिभाषासूत्र (घ) अधिकारसूत्र

iii) द्वित्वविधायक सूत्र है –

(क) अनचि च (ख) स्थानेऽन्तरतमः (ग) अलोऽन्त्यस्य
(घ) झलां जश् झशि

iv) यण् के प्रसङ्ग में लाकृतिः का विच्छेद होगा –

(क) ल+आकृतिः (ख) ला+आकृतिः (ग) ला+कृतिः
(घ) लृ+आकृतिः

v) **वृद्धिरेचि** अपवाद है –

(क) यण् का (ख) गुण का (ग) दीर्घ का (घ) अयादि का

2. **सत्य अथवा असत्य कथन हेतु क्रमशः सही (√) या गलत (×) चिह्न लगाइए –**

i) सप्तमीनिर्देश से विधीयमान कार्य व्यवहितपूर्व के स्थान पर होता है– ( )

ii) मधु+अरिः के दो रूप सम्भव हैं –( )

iii) एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत 4 वर्ण आते हैं –( )

iv) **अध्वपरिमाणे च** का उदाहरण "गव्यम्" है –( )

v) प्रत्याहार सूत्रों में पठित ऋकार के सवर्णियों की सङ्ख्या 18 है –( )

3. **समुचित उत्तर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –**

i) प्रसङ्ग होने पर ..... आदेश होता है।

ii) समसम्बन्धी विधि ..... यथासङ्ख्य होते हैं।

iii) **अलोऽन्त्यस्य** ..... सूत्र है।

iv) **ऋते च तृतीया समासे** का उदाहरण ..... है।

v) प्रार्णम् में ..... सन्धि है।

अभ्यास प्रश्न

1. **इको यणचि** सूत्रस्थ पदों की सङ्ख्या एवं विभक्तियाँ बताइए।
2. परिभाषासूत्रों की कार्यविधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. तपरकरण क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. **वृद्धिरादैच्** सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. प्रादि कितने और कौन–कौन से हैं? बताइए।

4.3 सारांश

अच् सन्धि के अन्तर्गत इस इकाई में आपने **इको यणचि** (6.1.77) सूत्र से लेकर **उपसर्गादृति धातौ** (6.1.91) तक के सूत्रों का विधिवत् अध्ययन किया। जिसके फलस्वरूप हमें अच् सन्धि के मुख्य भेदों का ज्ञान हुआ। अच् सन्धि का अभिप्राय स्वरों के मध्य होने वाली सन्धि है। जिनमें पूर्व एवं पर दोनों स्थानी अच् होते हैं। इस इकाई में आपने यण्, अयादि, गुण, दीर्घ तथा वृद्धि सन्धि का अध्ययन किया। सन्धिस्थलों में भी उत्सर्ग अपवाद नियम के अनुसार ही सूत्रों की प्रवृत्ति को जाना। कतिपय सन्धिस्थलों में विकल्प व्यवस्था किस प्रकार से होती है? इसका भी ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही सपाद सप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के एवं त्रिपादी में भी परसूत्र के प्रति पूर्वसूत्र के असिद्धत्व का प्रक्रियात्मक ज्ञान भी प्राप्त किया।

4.4 शब्दावली

आदेश – जो किसी के स्थान में उसको हटा करके होता है, उसे आदेश कहते हैं। **(शत्रुवदादेशः)** आदेश शत्रु के समान होता है। शत्रु अपने स्थानी को हटाकर ही स्वतन्त्र रूप से शासन करता है।

स्थानी – जिसके स्थान पर आदेश होता है, उसे स्थानी कहते हैं।

संहिता– वर्णों की अत्यन्त समीपता ही संहिता कहलाती है। पाणिनि ने **परः सन्निकर्षः संहिता** इस सूत्र से संहितासंज्ञा का विधान किया है।

अव्यवहित – अर्थात् व्यवधान रहित। जिन दो वर्णों (पूर्व व पर) के बीच कार्य हो रहा हो, उनके बीच किसी अन्य वर्ण का नहीं होना ही अव्यवहित होना है।

परिभाषा – परिभाषासूत्रों का कार्य विधिसूत्रों के कार्य में सहायता करना होता है। **अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।** सुधी+उपास्य में इको यणचि से यणादेश किस इक् के स्थान पर हो इसका निर्धारण करने के लिए **तस्मिन्निति.** इस परिभाषासूत्र की सहायता से इको यणचि का अर्थ इस प्रकार हो जाता है संहिता के विषय में, इक् के स्थान पर यण् आदेश तभी होता है जब वह इक् अच् के अव्यवहित पूर्व में हो तो।

संयोग – दो या दो से अधिक हल् वर्णों के मध्य में अच् न रहे तो उनकी संयोगसंज्ञा होती है। संयोगसंज्ञा का विधायक सूत्र **हलोऽनन्तराः संयोगः** है।

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।

शास्त्री, चारुदेव, व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

वरदराजाचार्य, सम्पा॰ एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन।

Apte, V.S. ***The Students' Guide to Sanskrit Composition.*** Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Kale, M.R. ***Higher Sanskrit Grammar.*** MLBD, Delhi.

Kanshi Ram, ***Laghusiddhantkaumudi***. (Vol. 1-3). MLBD. Delhi, 2009.

Ballantyne, James R. ***Laghusiddhantkaumudi***. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. i. क, ii. ग, iii. क, iv. घ, v. ख
2. i. सत्य, ii. असत्य, iii. सत्य, iv. असत्य, v. असत्य
3. i. सदृशतम, ii. यथासङ्ख्य अथवा सङ्ख्या के अनुसार, iii. परिभाषासूत्र, iv. सुखार्तः, v. वृद्धि

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY